ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 942-944
www.allresearchjournal.com
Received: 23-11-2016
Accepted: 25-12-2016

डॉ सुनीता शर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ सुनीता शर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय उदयपुर, राजस्थान, भारत

वेदों में अग्नि एवं यज्ञ चिकित्सा

डॉ सुनीता शर्मा

प्रस्तावनाः

यद्यपि आज चिकित्सा विज्ञान चरम उन्नति पर है। किन्तु इसका प्रारम्भ तो वेद से ही होता है। अथर्ववेद में न केवल रोगों के नाम ही उपलब्ध है, अपितु उनकी चिकित्सा का वर्णन तथा अनेक प्रकार की औषधियों का वर्णन भी वहां प्राप्त होता है। प्राचीन भारत का आयुर्वेद वेदों में प्राप्त चिकित्सा विषयक ज्ञान के आधार पर ही तो इतनी उन्नति कर सका था। वैदिक युग में अष्टांग आयुर्वेद मौजूद था। वैदिक काल से ही आयुर्वेद का अथाह साहित्य प्राप्त था।

अथर्ववेद के अनेक सूक्त आयुर्विज्ञान से सम्बन्धित हैं। उन सूक्तों में कहीं रोग-निवारण के लिए भेषज द्रव्यों का उल्लेख है तो कहीं सूर्य, चन्द्र, अग्नि. वायु आदि को आरोग्य का रक्षक अथवा आरोग्य के दाता के रूप में वर्णित किया गया है।

अथर्ववेद में अग्नि चिकित्सा

वैदिक ऋषि चिकित्सा के क्षेत्र में अग्नि का अनेक प्रकार से प्रयोग करते थे। यथा शीत लगने से उत्पन्न रोगों को दूर करने के लिए, सेक करके रोग हरने के लिए, औषधियों को पकाने के लिए, धूमवर्ति द्वारा औषधिग्रहण में, इसके अतिरिक्त रोग फैलाने वाले द्रव्यों को जलाने हेतु।

वैदिक ऋषि जाड़ा लगने के कारण उत्पन्न रोगों की औषध हिम को स्वीकार करते हैं। [1] और शीत जन्य रोगों की औषध अग्नि को मानते हैं। [2]

वैदिक ऋषि कब्ज रोगों के लिए सेक अथवा स्वेदन का प्रयोग करते थे। आचार्य चरक ने पञ्चकर्म चिकित्सा में तेरह प्रकार के स्वेदन विधियों का उल्लेख किया है। [3] पञ्चकर्म के पूर्वकर्म के रूप में स्वेदन का वर्णन काश्यपसंहिता [4] सुश्रुतसंहिता [5] अष्टांग हृदय [6] आदि ग्रन्थों में संख्याभेद के साथ सभी आचार्यों ने किया है।

आरोग्य-रक्षार्थ आहार द्रव्यों को पकाने के लिए अग्नि का प्रयोग वैदिककाल से हो रहा है। क्वाथ, अर्क, धृत, तेल आदि सिद्ध करने के लिए आयुर्वेद के सभी ग्रंथों में अग्नि का प्रयोग हुआ है।

पञ्चकर्म चिकित्सा में शिरो-विवेचन के लिए धूमवति का वर्णन चरक चिकित्सा ग्रंथों में मिलता है। धूम्रपान के सम्बन्ध में वहाँ समय निर्धारित है। धूम्रपान करने से वात कफजनित उर्ध्वजत्रुगत रोग दूर हो जाते हैं। [7]

चरक में सर्पविष चिकित्सा प्रकरण में सर्प के काटने पर छेदन करके अग्नि से जलाने का उल्लेख प्राप्त होता है। [8]

अथर्ववेद के अर्थवा ऋषि कहते हैं कि अग्नि से सभी प्रकार के रोगों को शरीर से दूर किया जा सकता है। [9]

स्वास्थ्य रक्षा के लिए अग्नि का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है रोग नाश के लिए सुगन्धित धृत आदि द्रव्यों को अग्नि में जलाकर पर्यावरण में समुचित गुणात्मक परिष्कार किया जाता है। अग्नि का प्रयोग दूषित पदार्थों को जला डालने के लिए भी होता है। हानिकारक पदार्थों को जलाने के साथ चन्दन, धूप. गुग्गुल सुगन्धित द्रव्यों को भी अग्नि में डाला जाता है, जिससे पर्यावरण दुर्गन्धरहित अथवा पवित्र हो जाता है।

अथर्ववेद में अग्नि को रक्षोहार सपत्नहा और शरीर को पार करने वाला साथ ही पीड़ा को हरने और पवित्रता देने वाला कहा गया है। [10] एतरेय ब्राह्मण में अश्वत्थ की उत्पत्ति अग्नि से बतायी गयी है। पीपल शरीर की अधिक उष्णता को दूर करने वाला, पित्त और श्लेष्म जन्य रोग, व्रण, रक्त दोष को दूर करने वाला, सौन्दर्य को बढ़ाने वाला कहा गया है। [11]

आयुर्वेद के आचार्य मानते हैं कि बोधि वृक्ष (पीपल) के कषाय को प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में मधु के साथ लेने से भयंकर त्रिदोषज वातरक्त भी दूर हो जाता है। [12] यह आरोग्यदायी चमत्कार अग्नि का है। क्योंकि पीपल अग्नि तत्त्व से ही उत्पन्न और अग्नि तत्त्व प्रधान वृक्ष है।

अतः प्राचीन काल के ऋषि मुनि और आचार्य आरोग्य की रक्षा के लिए और रोगों के निवारण के लिए अग्नि का विविध प्रकार से प्रयोग करते रहे हैं।

अथर्ववेद में यज्ञ चिकित्सा

''यज्ञ'' शब्द की व्युत्पत्ति यज्ञ विस्तार धातु से हुई है। इसका अर्थ सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार, इसलिए यज्ञ को सृष्टि का मूल कहा गया है सृष्टि के आदिकाल से ही यज्ञ की विधि चली आ रही है।

वैदिक साहित्य साथ ही उसके परवर्ती ग्रंथों में यज्ञों की विधियों एवं लाभों का विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है।

सर्वप्रथम मानव स्वर्गप्राप्ति और भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए यज्ञों का विधान करता था। इस हवन से उत्पन्न धुएं का प्रयोग वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार से किया और प्रयोगों के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यज्ञों से जो धूम्र उत्पन्न होते हैं, उनसे विविध रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश हाता है। भारतीय महर्षि अपने यज्ञों एवं हवनों में लकड़ी, घी, चीनी, गुड, शुष्क मेवे डालते थे। उन हवनों द्वारा जो धूम्र उत्पन्न होता था वह स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक गुणकारी होता था ।

अथर्ववेद का ऋषि ब्रह्मा यह स्वीकार करता है कि यज्ञ से आयु, प्राण, प्रजा. पशु और कीर्ति की वृद्धि होती है।

वैदिक यज्ञ उत्तम स्वास्थ्य प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। प्राचीनकाल में ऋषियों द्वारा समस्त रोग निवारणार्थ एवं सफल चिकित्सा के साधनों में यज्ञ भी एक सहायक साधन था। इसीलिए उस समय रोग अथवा महामारी फैलने पर बड़े-बड़े यज्ञ सम्पादित किये जाते थे, जिनसे प्रजा आरोग्य लाम करती थी। ये भैषज्य यज्ञ के नाम से जाने जाते थे। "गोपथ-ब्राह्मण में चातुर्मास्य यज्ञ को भैषज्य यज्ञ कहा गया है, क्योंकि ये रोग को दूर करने वाले होते हैं। [13]

इन भैषज्य यज्ञों के द्वारा जुकाम, बुखार, दस्त, शरीर पीड़ा इत्यादि मौसमी तथा चेचक, हैजा, प्लेग आदि प्रचलित बीमारियों का सामूहिक रूप से निवारण किया जाता है । [14]

यज्ञ द्वारा रोग निवारण का उल्लेख 'चरकसंहिता', बृहन्निघण्टु आदि आयुर्वेद के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में अनेकत्र मिलता है। होम, यज्ञों से ज्ञात-अज्ञात दुःसाध्य सभी रोगों का निवारण सम्भव है। कुछ रोग ऐसे हैं जिनका निदान नहीं हो पाता, वहीँ विशेष द्रव्यों से रोग-विशेषों की चिकित्सा का संकेत भी किया गया है। अथर्ववेद में ऐसा उल्लेख है कि जिसे गुग्गुल औषधि की उत्तम गन्ध प्राप्त होती है. उसे राजयक्ष्मा (तपेदिक) तथा स्पृश्य (संक्रामक) रोग नहीं होते हैं। [15]

अथर्ववेद में ऐसे अनेक यज्ञीय मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें किसी रोग विशेष का नामोल्लेख किए बिना ही सामान्य रूप से यज्ञाग्नि द्वारा रोग निवारण का उल्लेख किया गया है। एक मन्त्र में चारों ओर गमन करने वाले जल को बांध से रोकने के समान सर्वजन हितकारी यज्ञाग्नि द्वारा रूग्ण पुरुष के रोग को फैलने से रोकने का वर्णन किया गया है। [16] एक अन्य मन्त्र में रूग्ण पुरुष के अन्दर प्राण के संकचारार्थ तथा रोग के निवारणार्थ वरणीय और श्रेष्ठ यज्ञाग्नि से सर्वत्र सभी को दीर्घायु प्रदान करने की कामना की गई है। [17]

अन्यत्र मनोयोगपूर्वक देवों के यज्ञादि कर्म सहित यज्ञाग्नि में आहुत औषधीय हवियुक्त धृत की धारा से वर्ष पर्यन्त वृद्धि की कामना की गई है तथा रोगादि के क्षोत्र, नेत्र, प्राण आदि के छिन्न न होने तथा आयु और तेज से भी छिन्न न होने की कामना की गई है। [18]

इस प्रकार इन मंत्रों से स्पष्ट है कि विभिन्न औषधियों, वनस्पतियों के समित्, पत्र, पुष्प, फल, मूल इत्यादि हविद्रव्यों से मनुष्य शक्ति, पोषण तथा रोग निरोधक शक्ति प्राप्त कर लेता है तथा प्राप्त और अप्राप्त सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर दीर्घजीवी हो सकता है।

क्षय रोग तथा अन्य रोग हवन से दूर होते हैं। शीघ्र न छोड़ने वाले रोग भी अग्नि और विद्युत प्रयोग से दूर होते हैं। यज्ञ द्वारा अज्ञात रोग और राजयक्ष्मा (क्षय रोग) दूर होते हैं। [19]

उत्तम हविर्द्रव्य में सहस्रों पदार्थ होते हैं, जिससे लाभ प्राप्त होते और सौ वर्ष की आयु भी प्राप्त होती है। शरीर के सब दोष दूर होते हैं और पूर्ण आयु मिलती है। [20]

मनुष्य को सौ वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। इंद्रादि शब्द विशेष चिकित्साओं के वाचक हैं, इन्द्र - विद्युत चिकित्सा, अग्निचिकित्सा, सविता - सूर्यकिरण चिकित्सा, वृहस्पति मानसचिकित्सा, हवि चिकित्साओं को योग्य रीति से करने पर दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है। [21]

ऋग्वेद का ऋषि यक्ष्मनाश प्राजापत्य दृढ़तापूर्वक रोगी से कहता है - है रोगी मनुष्य, हम आपको मृत्यु के पाश से लौटा कर लाये हैं। पुनः नवजीवन प्राप्त करने वाले हे मनुष्य! आप हमारे समीप पुनः आये हैं। हे सर्वाङ्ग स्वस्थ। आपके लिए सम्पूर्ण विश्व को देखने में समर्थ नेत्रों को और आयुष्य को हमने उपलब्ध किया है। [22]

अथर्ववेद के एक मन्त्र में भी प्रदीप्त अग्नि में घृत की आहुति को यातुधान क्षयण अर्थात भयंकर व्याधियों का नाशक कहा गया है। [23]

गण्डमाला आदि दुर्जय रोग, पसलियों, तलवों के स्त्री सम्पर्क से होने वाले उपदंश आदि रोग, संक्रामक रोग, जीर्ण वृण (नासूर) आदि रोग भी यज्ञ द्वारा दूर होते हैं। [24]

यज्ञ द्वारा रोग निवारण की प्रक्रिया में जब मन्त्र पाठ के साथ-साथ स्वाहाकारपूर्व अग्नि में हवि डाली जाती है, उस समय मन्त्र का एक-एक शब्द रोगी के हृदय पर प्रभाव करता है तथा थोड़ी-थोड़ी देर पर स्वाहाकार के साथ अग्नि से उठने वाला हविधूर्म श्वासवायु के साथ रूग्ण व्यक्ति के अन्तस्तल को स्पर्श करता हुआ रोग को दूर करता है। यज्ञाग्नि में आहुत किये गये धृत अन्नादि पदार्थ तथा रोग नाशक औषधियों को रोग निवारक गन्ध वायु मण्डल में फैलकर नासिका में श्वास के माध्यम से वक्षस्थल में प्रवेश कर वहां विद्यमान छोटे-छोटे वायुकोशों को शुद्ध करता है तथा उनमें प्रविष्ट रोग किटाणुओं को भी नष्ट करता है, जिससे व्यक्ति निरोग हो जाता है। इसी प्रकार रोग निवारक गन्धयुक्त वायु जब फेफड़ों में पहुंचाता है तो इसका रक्त से सीधा सम्पर्क होता है और रोग निवारक परमाणु रक्त में पहुंच जाता है, जिससे रक्त में विद्यमान रोग-कृमि नष्ट हो जाते हैं।

रोग निवारण की याज्ञिक प्रक्रिया का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में श्वास और प्रश्वास रूपी दो प्राण वायुओं से कामना की गई है कि प्रथम (श्वास) प्राण के लिए बल का संचार कराये तथा दूसरी (निःश्वास) रक्त के दोषों को बाहर ले जाएं। [25]

अथर्ववेद में अनेक सूक्तों (1/8, 2/31-32, 4/ 37. 5/23, 29) में रोगोत्पादक कृमियों का उल्लेख मिलता है। ये श्वास वायु, भोजन, जल आदि के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर रोग उत्पन्न करते हैं। यज्ञ द्वारा अग्नि में कृमि-विनाशक औषधियों की आहुति देकर उसके धूम से इन रोगकृमियों को विनष्ट करके रोग से बचा जा सकता है। अथर्ववेद में एक स्थल पर उल्लेख प्राप्त होता है कि अग्नि में डाली गई आहुति रोगकृतियों को उसी प्रकार दूर उड़ा ले जाती है, जिस प्रकार नदी पानी के फेनों को दूर बहा ले जाती है। [26]

एक अन्य मन्त्र में अग्नि को रोग किटाणुओं का ज्ञाता बताते हुए उनसे उन किटाणुओं को विनिष्ट करने तथा उनसे होने वाले सैकड़ों हिंसाओं या हानियों से निवृत्त करने की प्रार्थना भी की गई है। [27]

एक स्थल पर मनुष्य को ग्रास बनाने वाले मांस भक्षक कृमि को नष्ट करने, उसकी आँख फोड़ने, हृदय को बीधने जिव्हा को काटने और दाँतों को तोड़ने के लिए यज्ञाग्नि से प्रार्थना की गई है। [28]

एक अन्य मन्त्र से कच्चे, पूर्णतः पके, अध पके अथवा तले हुए भोजन में प्रविष्ट होकर हानि पहुंचाने वाले किटाणुओं का यज्ञाग्नि द्वारा सन्ततिसहित विनाश करके शरीर को निरोग बनाने का उल्लेख है। [29]

इसके अतिरिक्त दूध में, छाछ में, जंगली धानों में, कृषि जन्य धान्य [30] में, पानी में बिस्तर में सोते हुए [31], दिन और रात्रि के समय हानि पहुंचाने वाले किटाणुओं को यज्ञाग्नि द्वारा विनिष्ट करके देह को रोग रहित करने का संकेत है। [32] अथर्ववेद में अग्नि, वायु विद्युत और सोम द्वारा कुछ ऐसे कृतियों के भी विनाश तथा उनके प्रभाव शरीर में छोड़कर उसकी मानसिक शक्ति, बुद्धि और स्मृति को नष्ट करते हैं। [33]

अतः स्पष्ट है कि यज्ञाग्नि में प्रदत्त औषधियों के प्रभाव से अनेक प्रकार के राग किटाणु विनिष्ट हो जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. यजुर्वेद 23/6, 45, 23/10, 40
2. अथर्ववेद - 6/106/3
3. चरकसंहिता 14/36-40
4. काश्यपसंहिता सूक्त 23/25-28
5. सुश्रुत चिकित्सा 22/1
6. अष्टांग उदय मुक्त 17/1
7. चरकसूक्त 5/24-26, 33-36
8. उपर्यरिष्टां बध्नीयात् छिन्द्याद्दंशं दहेत्तथा।
9. चरक चिकित्सा 23/252
10. अथर्ववेद 6/85/3
11. यथावृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः।
12. एवा ते अग्निना यक्ष्मं बैश्वानरेण वारये।।
13. अथर्ववेद 8/2/28
14. भावप्रकाश निघण्टु. 5/3-4
15. चरक चिकित्सा 20/100
16. भैषज्ययज्ञाः वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्माद्
17. ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।
18. ऋतुसन्धिषु वै व्याधिजयिते। गोपथ ब्राह्मण 1/19
19. भैषज्य कृतो ह वा यज्ञो यत्रैव ब्रह्मा भवात। छान्दोग्योपनिषद् 4/17/8 2.
20. अथर्ववेद 19/38/1
21. अथर्ववेद 6/85/3
22. अथर्ववेद 7/53/6
23. अथर्ववेद 19/58/1
24. 19. 'मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राहयद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्।। - अथर्व - 3 /11/1
25. सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहाषमेनम्।
26. इन्द्रो यथेनं शरदो नयात्यति विश्वस्यदुरितस्य पारम्।। - अथर्व - 3 / 11/3
27. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतसु वसन्तान्।
28. शतंत इन्द्रो अग्निः सविता वृहस्पतिः शतायुषा हविषहार्षमेनम्।। - अथर्व 3/11/4
29. ऋग्वेद - 10/161/5
30. अथर्ववेद 6/32/1
31. अथर्ववेद 7/76/1-5
32. अथर्ववेद 4/13/20
33. अथर्ववेद - 1/8/1
34. अथर्ववेद - 1 / 8/4
35. अथर्ववेद - 5/29/4
36. अथर्ववेद - 5/29/6
37. अथर्ववेद - 5/29/7
38. अथर्ववेद - 5/29/8
39. अथर्ववेद - 5/29/9
40. अथर्ववेद - 5/29/10